एम.एच.डी–1
हिंदी काव्य–1 (आदि काव्य, भक्ति काव्य एवं रीति काव्य)
सत्रीय कार्य

पाठ्यक्रम कोड : एम.एच.डी.
सत्रीय कार्य कोड : एम.एच.डी–1/टी.एम.ए/2017–18
कुल अंक : 100

1. निम्नलिखित प्रत्येक काव्यांश की लगभग 200 शब्दों में सप्रसंग व्याख्या कीजिए : 10x4=40

क) मोकों कहाँ ढूढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहों, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुनो भई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।

ख) सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरूनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए ।।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।।
कठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख का सत कल्प जिए।।

ग) खरभरू देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं।।
तेहिं अवसर सुनि सिव धनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा।।
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।।
गौरि सरीर भूति भल भाजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा।।
सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिसबस कछुक अरुण होड़ आवा।।
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते।।
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारू जनेउ माल मृगछाला।।
कटि मुनिबसन तून हुह बाँधे। धनु सर कर कुठारू कल काँधें।।

घ) कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कमीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागन में पौनहू में,
पातन में पिक में पलासन पगंत है।
द्वारे में दिसान में दुनी में देस देसन में,
देखौ दीपदी पन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में बज्र नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगर्यो बसंत है।

2. निम्नलिखित में से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए : 15x3=45

क) पृथ्वीराज रासो की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।
ख) कवि के रूप में कबीर का मूल्यांकन कीजिए।
ग) सूर द्वारा वर्णित वात्सल्य का सोदाहरण परिचय दीजिए।

3. निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 100 शब्दों दीजिए : 5x3=15

क) घनानंद के काव्य कौशल पर विचार कीजिए।
ख) पद्मावत में लोकजीवन के चित्रण पर प्रकाश डालिए।
ग) मुक्तक कवि के रूप में बिहारी की विशेषताएँ बताइए।

ASSIGNMENT SOLUTIONS GUIDE (2017-2018)

M.H.D.-1

हिन्दी काव्य–1 (आदि काव्य, भक्ति काव्य एवं रीति काव्य)

Disclaimer/Special Note: These are just the sample of the Answers/Solutions to some of the Questions given in the Assignments. These Sample Answers/Solutions are prepared by Private Teacher/Tutors/Authors for the help and guidance of the student to get an idea of how he/she can answer the Questions given the Assignments. We do not claim 100% accuracy of these sample answers as these are based on the knowledge and capability of Private Teacher/Tutor. Sample answers may be seen as the Guide/Help for the reference to prepare the answers of the Questions given in the assignment. As these solutions and answers are prepared by the private teacher/tutor so the chances of error or mistake cannot be denied. Any Omission or Error is highly regretted though every care has been taken while preparing these Sample Answers/ Solutions. Please consult your own Teacher/Tutor before you prepare a Particular Answer and for up-to-date and exact information, data and solution. Student should must read and refer the official study material provided by the university.

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रत्येक काव्यांश की लगभग 200 शब्दों में सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

(क) मोकों कहां ढूढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहों, पल भर की तालास में।
कहें कबीर सुनो भई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।

उत्तर–प्रसंग–संत कवि कबीरदास द्वारा रचित इस पद में निर्गुण काव्य-धारा के अनुरूप बाह्याचार, कर्मकांड का विरोध करते हुए एकाग्रचित्त होकर भगवान का ध्यान-स्मरण करने का परामर्श दिया गया है ।

व्याख्या–ईश्वर की प्राप्ति के लिए, उनके दर्शन करने के लिए घर-गृहस्थी के कर्त्तव्यों को त्यागकर वन-वन में भटकना, पर्वत-शिखरों पर जाकर तपस्या करना, समाधि लगाना, तीर्थ-स्थानों की यात्रा करना समय और शक्ति का अपव्यय है । ईश्वर तो सब प्राणियों के हृदय में अवस्थित है । अतः मन ही मन घर बैठे ही उसका ध्यान-स्मरण करने से उस दर्शन, उसका साक्षात्कार किया जा सकता है । वह न तो देवालयों, मन्दिरों, मस्जिदों में हैं और न पवित्र माने जाने वाले तीर्थ-स्थानों–प्रयाग, काशी, काबा, कैलाश पर्वत आदि में । उसे प्राप्त करने के लिए कर्म-काण्ड करने की भी आवश्यकता नहीं है । साधु-वेष धारण करना, जटाएं बढ़ाना, यज्ञ-हवन करना, सब व्यर्थ हैं । संसार को त्यागकर योगी, तपस्वी, बनकर कृच्छ साधना करना भी व्यर्थ है । यह सब करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती । उसे प्राप्त करने के लिए मन की शुद्धता, आत्मा की पवित्रता, उच्च विचार, परोपकार की भावना और परमात्मा में सच्ची भक्ति, उसको पाने की लग्न, होनी चाहिए । इन गुणों से युक्त व्यक्ति पलभर में ईश्वर को प्राप्त कर सकता है, ईश्वर में मिलकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है । कबीर कहते हैं–हे साधुओं । ईश्वर सर्वव्याप्त है, घट-घट में निवास करता है उसके दर्शन एकाग्रचित्त होकर उसका ध्यान करने से हो जाते हैं । अतः उसकी खोज में वन-वन भटकना मूर्खता है ।

विशेष–1. निर्गुण निराकार ब्रह्म के प्रति आस्था ।
2. बाह्याचार, बाह्याडम्बर, ढोंग का विरोध ।
3. ध्यान और स्मरण की महत्ता बतायी गयी है ।
4. भाव-साम्य–कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूंढै बन माहिं
तैसे घट घट राम हैं दुनिया देखे नाहिं ।

(ख) सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।

www.eStudymart.com The Hub for Online Reading and Ebooks

लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए॥
कठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख का सत कल्प जिए॥

उत्तर–व्याख्या–हाथ में मक्खन लिए हुए कृष्ण शोभा पा रहे हैं। घुटनों के बल चल रहे हैं। उनके शरीर में मिट्टी लगी हुई सुशोभित है, मुख पर दही लपेटा है। उनके कपोल सुन्दर हैं, नेत्र चंचल हैं और मत्थे पर गोरोचन का टीका लगा है। उनकी लटें मुख पर लटक रही हैं। ऐसा लगता है मानो मस्त भौंरें मतवाला करने वाले रस को पी रहे हैं। उनके कंठ में कंठुला नामक गहना है और हृदय पर बघनखा शोभायमान है। सूरदास जी कहते हैं कि वह व्यक्ति धन्य है जिसने एक पल के लिए भी यह दर्शन प्राप्त किये, सैकड़ों कल्प जीने से इतना लाभ नहीं जितना कि कृष्ण की उस छवि को निहारने से।

विशेष–कल्प–चारों युगों के एक चक्र को कल्प कहते हैं।

बघनखा–शेर के नाखून के आकार का एक गहना जो बच्चों को पहनाया जाता था।

(ग) खरभरू देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥
तेहिं अवसर सुनि सिव धनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भाजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिसबस कछुक अरुण होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुं चितवत मनहुं रिसाते॥
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारू जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून हुह बांधे। धनु सर कर कुठारू कल कांधें॥

उत्तर–प्रसंग–यह पद गोस्वामी तुलसीदास द्वारा कृत 'श्रीराम चरितमानस' के बालकांड से उद्धृत है। जब सीता स्वयंवर के लिए रखे गए धनुष को कोई भी बलशाली राजा न उठा सका तब श्री रामचन्द्र ने धनुष उठाकर जैसे ही उसकी प्रत्यंचा चढ़ाई धनुष उसी समय टूट गया। तब अन्य घमण्डी राजाओं ने राम-सीता के विवाह होने का विरोध किया। चारों ओर शोर मच गया। तब लक्ष्मण जी क्रोधित हो गए, परन्तु राम जी के डर के कारण चुप रहे। उन्हें शोर तथा विरोध करने वाले राजाओं पर बेहद क्रोध आ रहा था। तभी परशुराम जी सभा में प्रवेश करते हैं।

व्याख्या–घमण्डी राजाओं की नीति को देख कर, उनकी विरोध रूपी वाणी को सुनकर कि वे रामचन्द्र व सीता के विवाह में व्यवधान डाल रहे हैं, जनकपुर की स्त्रियाँ इस खलबली को देखकर व्याकुल हो उठीं और सब मिलकर राजाओं को गालियाँ देने लगीं। उसी समय शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर, भृगुकुल रूपी कमल के सूर्य के समान तेजस्वी परशुराम जी वहाँ उस सभा में पधारे। तुलसीदास जी कहते हैं कि परशुराम जी को आया देखकर सब राजा सकुचा गए अर्थात् सभी डर गए। जिस प्रकार बाज के झपट पड़ने पर बटेर छिप जाते हैं उसी प्रकार से परशुराम को देखकर सभी राजा जहाँ-तहाँ छिप गए। तुलसीदास जी परशुराम के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनके गोरे शरीर पर भस्म बहुत ही फब रही है और विशाल ललाट पर त्रिपुण्ड बहुत ही शोभा दे रहा है। उनके सिर पर जटा विराजमान है और उनका चन्द्र के समान मुख क्रोध के कारण लाल हो रहा है। तुलसीदास उनके क्रोध का वर्णन करते हुए बताते हैं कि क्रोध के कारण उनकी भौहें टेढ़ी हो गई हैं और लाल आंखें हैं। उनके सहज ही देखने पर अर्थात् वे किसी की तरफ साधारण रूप से भी देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो क्रोध कर रहे हैं। उनके शारीरिक गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि उनके कंधे बैल के समान ऊंचे और पुष्ट हैं, छाती और भुजाएं विशाल हैं। उनकी वेशभूषा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उन्होंने सुन्दर शरीर पर सुन्दर यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारणा कर रखा है, उनके गले में माला शोभा दे रही है और वस्त्रों के स्थान पर वे मृगचर्म धारण किए हुए हैं। कमर में मुनियों का वल्कल (वस्त्र) और दो तरकश बांधे हुए हैं। हाथ में धनुष-बाण और सुन्दर विशाल कंधे पर फरसा धारण किए हुए हैं। उनकी वेशभूषा तो बिल्कुल शांत प्रतीत होती है परन्तु उनकी करनी बहुत कठोर है। उनके इस स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता है कि मानो वीर-रस ही मुनि का शरीर धारण करके, जहाँ सब राजा लोगों की सभा है वहाँ आ गया हो। अर्थात् परशुराम जी का स्वरूप तो मुनियों जैसा है परन्तु उन्होंने क्षत्रियों की तरह अस्त्र-शस्त्र धारण कर रखे हैं।

भावार्थ–इस पद में कवि ने भृगुकुल रूपी कमल के सूर्य परशुराम के शारीरिक गुणों व स्वरूप का उल्लेख किया है। उनकी वेशभूषा से प्रतीत होता है कि वे मुनि हैं परन्तु उनके शस्त्रों को धारण करने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे कोई क्षत्रिय राजा हैं। उनके इस स्वरूप को देखकर सभी राजा लोग भयभीत होकर इधर-उधर छिप गए हैं। उनका स्वरूप बहुत ही तेजस्वी है। कवि ने इस पद में उनके स्वरूप का वर्णन करने का सफल प्रयास किया है।

www.estudymart.com The hub for Online Reading and E-books

विशेष–1. इसमें परशुराम के सभा में आने की हलचल का वर्णन है तथा राजाओं की स्थिति तथा परशुराम के रूप का वर्णन है।

2. इसमें चौपाई तथा दोहा छंद है।

3. इस पद में रूपक, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार प्रयुक्त है, जैसे–'भृगुकुल कमल पतंगा' ''बाज झपट जनु लवा'' 'सहज चितवन मनहु रिसाते'

4. इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा अवधी है।

(घ) कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कमीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागन में पौनूह में,
पातन में पिक में पलासन पगंत है।
द्वारे में दिसान में दुनी में देस देसन में,
देखौ दीपदी पन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में बज्र नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगर्‍यो बसंत है।

उत्तर–प्रसंग–प्रस्तुत पद्यांश रीतिकालीन कवि पद्माकर द्वारा विरचित है। छंद में कवि ने बसंत ऋतु से वातावरण में आए सौंदर्य परिवर्तन का मनोहारी एवं उल्लासमय चित्रण किया है। बसंत के सौंदर्य का वर्णन करते हुए पद्माकर कहते हैं कि

व्याख्या–पेड़ों के कुंजों में, कूलन में केलि में, बसंत के सौंदर्य का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। क्यारियों में कलियाँ खिल कर किलकिलाती लग रही हैं। फूलों के पराग की सुगंध चारों ओर फैलकर मादकता का संचार कर रही हैं। पलाश के पेड़ों पर फूल खिल गए हैं। द्वार–द्वार पर सभी दिशाओं में देश–परदेश में पक्षियों की कतार प्रकृति की शोभा बढ़ा रही है। ब्रज के वासी और गोपियाँ सभी को बसंत की सौन्दर्यमयी आभा ने उल्लसित कर दिया है। वन में बाग में, बसंत अठखेलियाँ कर रहा है। कवि कहना चाहता है कि बसंत ने अपने सौंदर्य से सभी को अभिभूत कर दिया है। चारों ओर उल्लास का वातावरण है। प्रकृति के रंग चारों ओर बिखर गए हैं।

विशेष–

1. बसंत का उल्लासमय चित्रण है।
2. पूर्ण पद्यांश में अनुप्रास अलंकार की छटा विद्यमान है।
3. भाषा में छंदमयता तथा प्रवाहमयता का गुण दिख रहा है।

प्रश्न 2. निम्नलिखित में से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए–

(क) पृथ्वीराज रासो की काव्यगत विशेषताएं बताइए।

उत्तर–हिन्दी के आदि कवि चन्दबरदाई का **'पथ्वीराज रासो'** ऐतिहासिक-अनैतिहासिक वत्तों से आच्छादित, पौराणिक कथाओं से लेकर कल्पित कथाओं का अक्षय तूणीर, प्राचीन काव्य-परम्पराओं तथा नवीन का प्रतिपादक, भौगोलिक वत्तों की रहस्यमयी गुफा, प्राकत-अपभ्रंशकालीन सफल छंदों की विराट् पष्ठ-भूमि, हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं की संक्रान्तिकालीन रचना, समकालीन युग का सांस्कतिक प्रमाण, उत्तर भारत का आर्थिक मानचित्र, विभिन्न मतावलम्बियों के दार्शनिक तत्वों का आख्याता तथा मानव की चित्तवत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषक, यह अपने ढंग का एक अप्रतिम महाकाव्य है।

रासो काव्य-ग्रन्थ है और काव्य में इतिहास की अनुकति न होकर केवल उसका आधार ग्रहण किया जाता है। अतः रासो को मूल्यांकन, जैसा कि **डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने कहा है काव्य-सौन्दर्य के आधार पर ही होना चाहिए। 'रासो' विशालकाय चरित-काव्य है, जिसमें प्रबन्धात्मकता, युगानुरूप जीवन-मूल्यों का चित्रण, रस-परिपाक, अद्भुत चित्रण-शक्ति और सुन्दर अलंकार-योजना पायी जाती है। प्रबंध-काव्य की दष्टि से भी वह एक सफल रचना है।

'पथ्वीराज रासो' के रचयिता चंद भी पथ्वीराज के सखा, सामन्त और दरबारी कवि बताए जाते हैं। वह अपनी वीर रस पूर्ण कविता से योद्धाओं को ही प्रोत्साहित नहीं करते थे, अपितु स्वयं भी रणांगण में उतर कर शत्रु से लोहा लेते थे। अतः रक्त-बिन्दुओं के अक्षरों में लिखे गए उनके सैन्य एवं युद्ध-संचालन के वर्णन कोरी कल्पना मात्र न होकर प्रत्यक्ष अनुभव पर आश्रित सजीव एवं गतिशील चित्र हैं।

चन्द अपने वस्तु-वर्णन और भावाभिव्यंजना के लिए विख्यात हैं। वस्तु-वर्णन की कुशलता प्रबंध रचना के इतिवत्तात्मक अंशों को भी सरस बना देती है। रासोकार वस्तु-वर्णन की दष्टि से अत्यंत सफल कवि हैं। महाभारत से प्राप्त परम्परा का आधार ग्रहण कर उसने व्यूह-वर्णन के अत्यंत सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। वीर रस के उद्दीपक रूप में उसने सेनाओं, अस्त्र-शस्त्रों, घोड़ों, हाथियों आदि का विशद् वर्णन किया है। गौरी की सेना का एक चित्र देखिए–

रुहंगी फिरंगी हलम्बी समानी

ठठी ठट्ठ बल्लोच ढालं निसानी

मंजारी चखी, मुक्ख जम्बुक लारी

हजारी हजारी इक्के जोहृ भारी ।

सेना का पड़ाव डालते समय का चित्र अथवा रणांगण में रणोद्धत वीरों की तस्वीर भी देखने योग्य है–

सुण्डाल काल आग्गे हृरे

कढ़े दोइ कलहन्त किय

चालन्त बाण गौरे प्रबल

मानहु अन्हृ कि मार दिय

वीर रस के आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारी भावों की सांगोपांग योजना निम्न पंक्तियों में देखिए–

हयग्गयं सजे भरं । निसान बज्जि दूभरं ।।

नफेरि बीर बज्जई । मदग झल्लरी गई ।।

सुनत ईस रज्जई । तनीस राम सज्जई ।।

सुभेरी झुंपक घनं । स्रवन्न कुहि झंझनं ।।

उसाह मध्य ते चले । सखुन्न बंदि जे भले ।।

'रासो' में युद्ध-वर्णन दो प्रकार के मिलते हैं–प्रथम तो वीर रस के जिन्हें पढ़ते ही पाठक का हृदय उत्साह से भर जाता है । पथ्वीराज के लड़ते समय का यह दश्य इसी प्रकार का है–

उड्डि राज प्रथिराज बाग लग मनों वीर नट ।।

कढ़त तेग मनो वेग लगत मनों बीज झट्ट घट्ट ।।

थकि रहे सूर कौतिग गिगन रगन मगन भई स्रोन हृर ।।

दूसरे युद्ध-वर्णन रौद्र और बीभत्स रसों के अंतर्गत आते हैं जिनमें कवि लड़ने वाले वीर सामन्तों की भावना से नहीं, वरन् युद्धस्थल के दर्शक की भावना से वर्णन करता है–

हुँकार हुक्क जोगिनिय डक्क ।

मुँह मार मार बज्जै करक्क ।।

नचयौ ईस गौर दरिद सीस ।

षप्परि उपट्टि घुट्टे हुरीस ।।

इन वर्णनों में वीरों की हुँकार, उनकी दर्पपूर्ण उक्तियाँ, युद्ध-भूमि में भूत-प्रेतों के नत्य, योगिनियों का रुधिर-पान, कबन्धों से रक्त-प्रवाह, गिद्धों का झपटना आदि पाठक के हृदय में बीभत्स रस की सष्टि करते हैं । इन वर्णनों को पढ़ते समय क्षण भर के लिए हम भूल जाते हैं कि हम किसी पुस्तक से सैन्य एवं युद्ध के वर्णन पढ़ रहे हैं, वरन् पढ़ते समय लगता है जैसे हम सेनाओं की पदध्वनि, सैनिकों की हुँकार, हम प्रत्यक्ष सुन रहे हैं । इन चित्रों की सजीवता को देख हम कुछ समय के लिए रासो की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का प्रश्न भूल काव्य-रस में अवगाहन करने लगते हैं ।

छंदों का चुनाव भी कवि ने युद्ध की स्थिति के अनुकूल किया है । जहाँ युद्ध की सजावट आदि का वर्णन है, वहाँ तो धीमी गति वाले और पूर्ण प्रभाव डालने वाले छंदों–कवित्त, छप्पय, कुण्डली आदि का प्रयोग किया गया है । किंतु जहाँ युद्ध तेजी पकड़ता है, वहाँ वर्णन भी द्रुत प्रभावकारी शीघ्र गति वाले पद्धरी, नाराच, बिज्जू-माली आदि छंदों में है; इन छंदों की भाषा भी ओजपूर्ण है ।

रासो में वीर रस प्रधान है, पर शंगार भी उसके साथ आया है क्योंकि युद्ध-वीर स्वभावतः रति-प्रेमी होते हैं । पथ्वीराज के समय में अधिकांश युद्ध कामिनी को लेकर होते थे । राजा या सामन्त का किसी सुन्दरी पर आसक्त हो जाना और फिर उसकी प्राप्ति के लिए युद्ध करना एक सामान्य घटना थी । स्वयं पथ्वीराज ने अनेक विवाह किए थे । चन्द ने इन विवाहों तथा विलास का विशाल वर्णन किया है । रासो में विवाह से पूर्व और उसके बाद सुन्दर राजकुमारियों के नखशिख-वर्णन, काम-क्रीड़ा और सहवास के अनेक चित्र मिलते हैं । नायिका के रूप और सौन्दर्य का चित्र यदि निम्न पंक्तियों में दष्टव्य है–

मनहु कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय

बाल बैस ससिता समीप, अमत रस पिन्निय

शंगार रस को पुष्ट करने के लिए ही कवि ने षड्ऋतु और बारहमासा का वर्णन किया है । उदाहरण के लिए, कनवज्ज खण्ड में षड् ऋतुओं का ललित वर्णन मिलता है । ये चित्र यद्यपि उद्दीपन की दष्टि से प्रस्तुत किए गए हैं, पर वे रासो-कार के ऋतु विषयक ज्ञान, निरीक्षण-शक्ति और

www.estudymart.com The Hub for Online Reading and E-books

वर्णन-कौशल के भी परिचायक हैं। संस्कत कवियों जैसा प्रकति का सांगोपांग और संश्लिष्ट वर्णन तो रासो में नहीं है फिर भी कुछ वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। वर्षा वर्णन का यह चित्र दृष्टव्य है–

''घन-घटा बधि नभ मेघ छाय
दामिनिय दमकि जामिनिय जाय
बोलंत मोर गिरवर सुहाय
चातिग्ग रटत चिहुँ ओर नांव''

इसी प्रकार का विभावांतर्गत शरद् का वर्णन भी रासो में मिलता है। बसन्त ऋतु का एक भाव सापेक्ष्य चित्र भी द्रष्टव्य है–

भवरि अंब फुल्लिग कदंब रयनी दिघ दीसं ।।
भंवर भाव भुल्लै भ्रमन्त मकरन्दय सीसं ।।

वस्तु-वर्णन के साथ ही चन्द की भावाभिव्यंजना भी अत्यंत हृदयग्राही और रसमय है। उन्होंने नारी के बाह्य रूप का ही वर्णन नहीं किया है, उसके मन में उठने वाली भावोर्मियों का भी चित्रण किया है। वयः सन्धि के समय किशोरी के मन में उठने वाली भाव-तरंगों का चित्रण पूरी मनोवैज्ञानिकता के साथ किया गया है, तो गुरुजनों के मध्य बैठी नायिका के हृदय में नायक के प्रति उठने वाले भावों का चित्रण भी–

गहलवाल पिय पाति सुगुरुजन से भरे ।
लोचन मोचि सिरंग मुदमसु बहि परे ।।

पात्रों के मन की दुविधा, असमंजस, अंतर्द्वन्द्व के चित्रण में भी कवि की मनोविज्ञान दष्टि झलकती है। चाहे वयःसंधि के समय नायिका की दुविधा हो, चाहे पथ्वीराज के साथ दिल्ली जाने के लिए घोड़े पर बैठती संयोगिता की दुविधा और चाहे पथ्वीराज से एकांत में मिलने जाने की तैयारी करती हुई शशिव्रता के मन का द्वन्द्व हो, सबका चित्रण अत्यन्त मार्मिक है।

'रासो' में विप्रलम्भ शंगार के चित्र विरल हैं, और जो हैं भी उनमें हृदय की वह तल्लीनता, गम्भीरता, और अनुभूति की तीव्रता नहीं आ पायी है जिसके कारण वियोग-चित्रण मर्मस्पर्शी हो उठता है। केवल एक-दो स्थल ही अपवाद हैं–

देखन्त नैन सुझ्झै न दिसि परिय भूमि सन्हार ।
संजोगी जोगिन भयी जब बज्जिग हरि चाल ।।

सभी कवि अपनी कविता-कामिनी को अलंकत करते हैं। चन्द की रचना में भी अलंकारों की छटा दर्शनीय है। शब्दालंकारों में रासोकार ने अनुप्रास और यमक का प्रयोग कुशलता से किया है। कहीं म और मधु का अनुप्रास है, तो कहीं मधुरित शब्द में श्लेष है। अनुप्रास तो बहुत ही स्वाभाविक ढंग से उनके काव्य में आ गया है–

जंग जुरन जालिम जुझार भुज सार भार भुअ।

अर्थालंकारों के अंतर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति का प्रयोग बहुलता से हुआ है। जहाँ उपमा के प्रयोग में कवि ने काव्य-परम्परा का ध्यान रखते हुए सुप्रसिद्ध, प्रचलित उपमानों का प्रयोग किया है, वहाँ कहीं-कहीं उनके उपमान नए और कवि की मौलिक उद्भावना-शक्ति के भी परिचायक हैं। शिशु का वर्णन करते हुए उन्होंने जो उपमान प्रस्तुत किये हैं, वे अभिनव और अत्यंत प्रभावशाली हैं–

मिलि बाल जाल कवि रही केलि
बढ़ि रही दन्दु जन बीज बेलि।

चंदबरदाई रूढ़ उपमानों के उपयोग से सौंदर्य-वर्णन में शंगार को अद्भुत से पुष्ट भी कर सकते हैं। प्रसंग पथ्वीराज द्वारा संयोगिता का प्रथम दर्शन है। पथ्वीराज ने देखा–

कुंजर के ऊपर सिंह। सिंह के ऊपर दो पर्वत। पर्वत पर भौरें। भौरों पर चन्द्रमा। चन्द्रमा के ऊपर एक तोता बैठा है। जिस पर दो हिरण हैं हिरन पर दो धनुष और धनुष पर कंदर्प।

कुंजर उप्पर सिंघ, सिंघ उप्पर दुई पव्वय।
पव्वय उप्पर भंग भंग उप्पर ससि सुभ्भय।।
सरि उप्पर इक कीर कीर उप्पर मग दिट्ठौ।।
मग उप्पर कोवंड संघ कन्द्रप्प वयट्ठौ ।।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये नख-शिख के रूढ़ उपमान हैं जिन्हें चंद ने अपने ढंग से प्रस्तुत करके अद्भुत को श्रंगार का सहायक बना दिया है। इसी प्रकार वे यथाअवसर वीभत्स और भय को वीर का सहायक बनाते हैं।

कवि ने अप्रचलित और अप्रसिद्ध उपमान भी साहस के साथ रखे हैं। ये नवीन उपमान अर्थ-सुलभता के साथ अर्थ-गौरव की भी वद्धि करते हैं। उपमा के प्रयोगों द्वारा रासोकार ने अपना अभीष्ट सिद्ध करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। उपमा के बाद 'रासो' में रूपक का स्थान है। वैसे तो उसके सभी विभेद उसमें मिलते हैं, परन्तु कवि को सांगरूपक विशेष प्रिय था और इस के प्रयोग में उसे आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई है। रासो के आरम्भ में ही निम्नलिखित रूपक इसका प्रमाण है–

www.mystudymart.com
The Hub for Online Reading and E-books

''काव्य-समुद्र कवि चन्द्र कत मुगति समप्पन ज्ञान ।
राजनीति बोहिथ सफल पार उतारन यान ।।''

भाषा–चन्द का भाषा पर असाधारण अधिकार है । उनमें भावों के अनुरूप भाषा को ढालने की अद्‌भुत क्षमता है । भावानुकूलता और तीव्र गति उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता है । चंदबरदाई एक कुशल कवि हैं । भाषा पर उनका अधिकार असाधारण है । उन्होंने पहले से चली आ रही काव्य-परंपरा को एक ऊँचाई प्रदान की । कवि में भावों के अनुरूप भाषा को मोड़ने की अद्‌भुत क्षमता है । भावानुकूलता और तीव्र सौंदर्यात्मकता चंद की भाषा की प्रमुख विशेषता है।

रासो का कवि अनुनासिक प्रयोग से प्रायः झंकार उत्पन्न करता है । चाहे शृंगार हो या वीर अनुनासिक झंकार **रासो** में अबाध गति से सुनाई पड़ती है । झंकार स्थिति को ध्वनित करके गुंजा देता है । द्वित्व व्यंजनों का प्रयोग प्रधानतः युद्ध-वर्णन में और सामान्यतः सर्वत्र मिलता है । **रासो** का कवि अपने समय की काव्य-परंपरा का रस-सिद्ध कवि है । उसने स्वयं लिखा है–

रासउ असंभु नव रस सरस छंदु चंद किय अमिय सम।
शृंगार वीर करुन विभच्छ मय अद्‌भुतइ संत सम।।

चंद की काव्य-भाषा में अनुस्वार द्वित्व मिश्र की ध्वनियाँ प्रवाह-अवरोध नहीं करती । वे चंद के भाषा-कौशल द्वारा अभूतपूर्व प्रवाह उत्पन्न करती हैं । प्राकत-अपभ्रंश की काव्य परंपरा में चंद का ध्वनि-प्रवाह अद्वितीय है । ध्वनि-प्रवाह अपभ्रंश के महान् कवि स्वयंभू में चंद से कम नहीं किंतु चंद का काव्य-प्रवाह द्वित्व एवं अनुस्वार के साथ गूंजता हुआ गतिशील होता है । चंद चाहे देवी देवताओं की स्तुति करें, युद्ध का वर्णन या नारी-शरीर का सौंदर्य या विनोद-यह अनुस्वार द्वित्व सहित प्रवाह सर्वत्र दिखाई पड़ता है । वे वर्णानुप्रास के भी सिद्ध कवि हैं । उनके भाव नाद-प्रवाह में रूपांतरित हो जाते हैं। काव्य के प्रारंभिक अंश में सरस्वती वंदना में स्वर व्यंजनों की मैत्री से उत्पन्न ध्वनि की आवर्तें चंद की शैली का ठेठ उदाहरण हैं ।

चंदबरदाई छंद के राजा माने जाते हैं । जैसे-जैसे भाव बदलते जाते हैं, वैसे-वैसे कवि छंद की राह बदलता चलता है और आरोह-अवरोह के साथ भाषा संगीतमय लय में गुनगुनाती हुई ठुमकती चलती है । इससे एक संगीत पैदा होता है । चंदबरदाई छंदों के अधिकारी कवि हैं । उन्होंने अपने समय में प्रचलित अधिकांश छंदों का प्रयोग किया है । सबसे ज्यादा मन लगता है **छप्पयों में** । चंद मार्मिक चित्रण छप्पयों में करते हैं । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे अन्य छंदों में मार्मिक उक्तियाँ नहीं कहते । गाथा का उपयोग वे प्रायः कथा को आगे बढ़ाने के लिए करते हैं ।

रासो में अड़सठ प्रकार के छन्द पाये जाते हैं, जिनमें अधिकांश अपभ्रंश-कालीन मात्रिक छंद हैं । अभिव्यंजना के विचार से इन छंदों का चुनाव कवि की दूरदर्शिता एवं कुशल शिल्पी होने का परिचायक है। चन्द का भाषा पर पूर्ण अधिकार था, और शब्द उनके इशारे पर नाचते चलते थे । उनकी भाषा में संस्कत, अपभ्रंश और देशभाषा सभी के शब्द हैं ।

(ख) कवि के रूप में कबीर का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर–जिस युग में कबीर का जन्म हुआ उस युग में हिन्दू समाज और धर्म विशृंखलित और अव्यवस्थित था । नाना प्रकार के अंधविश्वासों और पाखंडों में जनता डूबी हुई थी । अधिकांश हिन्दू रूढ़िवादी थे और धर्म के क्षेत्र में सच्ची ईश्वर-भक्ति के स्थान पर बाह्याचार और आडम्बर की प्रधानता थी । मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, माला-तिलक, गंगा-स्नान, व्रत-उपासना, पशु-बलि आदि को धर्म समझा जाता था । हिन्दू जाति अनेक सम्प्रदायों में विभक्त थी । कोई वैष्णव था, कोई शैव और कोई शाक्त । इस प्रकार धर्म का सच्चा स्वरूप लुप्त हो गया था । उधर मुसलमान भी कट्टरपंथी थे और वे भी हिन्दुओं की तरह बाह्यचार जैसे नमाज, रोजा, धार्मिक उत्सवों को मनाना आदि में ही अधिक लीन थे; धर्म के नाम पर अनेक क्रूर और अनैतिक कार्य करते थे, जैसे गाय की कुर्बानी देना, मांस-भक्षण आदि ।

कट्टरपंथी होने के कारण तथा छुआछूत की कुत्सित प्रथा के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान दोनों में ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य की भावना बढ़ गयी थी । अतः आये दिन छोटी-छोटी बातों पर दोनों के बीच संघर्ष होता रहता था । दोनों एक-दूसरे को फूटी आंखों नहीं देख सकते थे । कबीर ने समाज में व्याप्त इन विकृतियों को स्वयं देखा, अनुभव किया और क्षुब्ध हुए ।

कबीर के समय के हिन्दू पंडे और पुजारी तथा इस्लाम धर्म के मुल्ला और मौलवी सभी उनसे नाराज थे; कबीर को उनके हाथों अनेक पीड़ाएं सहन करनी पड़ीं । अपने युग की इन विषम परिस्थितियों का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और इसकी प्रतिक्रिया उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देती है ।

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति कहा है । वस्तुतः कबीर मानवतावादी संत और भक्त थे । एक ओर समग्र मानव जाति का मंगल और कल्याण चाहते थे और दूसरी ओर पाखंड, आडम्बर, बाह्याचार के विरुद्ध उनके मन में तीव्र घृणा और विद्रोह का भाव था । हिन्दी विद्वानों ने कबीर को ज्ञानाश्रयी शाखा का संत कवि कहा है क्योंकि कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और ईश्वर को एक मानते थे । सूफी-संतों और उनकी विचारधारा ने भी कबीर को प्रभावित किया था । उनका अधिकांश ज्ञान सत्संग से प्राप्त हुआ था, क्योंकि वह अनपढ़ थे । उन्होंने अपने विषय में कहा है :

''मसिकागद छुऔ नहि, कलम गही नहि हाथ ।''

उनके ज्ञान का स्रोत धर्म-ग्रंथ और शास्त्र की पुस्तके नहीं है। वह मानते भी थे कि सच्ची साधना के लिए धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना आवश्यक नहीं है :

www.estudymart.com
The Hub for Online Reading and E-books

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ
पंडित भया न कोय ।''
''ढाई आखर प्रेम का
पढ़ै सो पंडित होय ।''

कबीर ने सामान्य व्यक्तियों की तरह विवाह किया, उनके एक बेटा और एक बेटी भी हुए । आजीविका के लिए कपड़ा बुनने का कार्य करते रहे और इस प्रकार आजीवन गृहस्थी रहे । परन्तु प्रकृति से वह संत थे । उन्होंने सगुण भक्ति, अवतारवाद और मूर्तिपूजा का मार्ग स्वीकार नहीं किया क्योंकि उनका विश्वास था कि ब्रह्म एक है, वह निर्गुण और निराकार है, सर्वव्यापक है और अत्यंत सूक्ष्म है :

''पुहुवास तैं पातरा ऐसा तन अनूप ।''

अन्यत्र भी उन्होंने ब्रह्म को मन-वाणी से अगम और अगोचर कहा है । वह सकाम भक्ति के स्थान पर निष्काम भक्ति को अधिक महत्त्व देते थे । तुलसी की तरह उनकी भक्ति दास्य भाव की भक्ति थी । उन्होंने स्वयं को ईश्वर का कुत्ता माना है :

''कबीरा कूता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेबड़ी जित खींचै तित जाउं।।''

भगवान को प्राप्त करने के लिए वह बाह्य आडम्बर और बाह्यचार का विरोध करते हुए सदाचार और वैदिक आचरण को महत्त्व देते थे । इसीलिए माता-पिता की सेवा, परोपकार, दया, और करुणा आदि पर बल दिया है और गरीबों को सताने का विरोध किया है :

''निर्बल को न सताईये जाकी मोटी हाय ।
मुई खाल की साँस सौं लोह भस्म हो जाय।।''

कबीर ने जीवन-भर अनुभव किया कि उनके चारों ओर का समाज सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों से अभिशप्त है, और हिन्दू, मुसलमान दोनों परस्पर लड़-झगड़कर अपने जीवन को कष्टमय बना रहे हैं । मानवतावादी कबीर के लिए यह असह्य था । अतः उन्होंने जहां कहीं भी विकृति देखी–चाहे सामाजिक जीवन में हो और चाहे धर्म के क्षेत्र में, सर्वत्र इन विकृतियों का विरोध किया । उनका यह विरोध कहीं सीधे-सीधे शब्दों में है, तो कहीं व्यंग्य के रूप में । हिन्दू और मुसलमान दोनों में से उन्होंने किसी को नहीं बख्शा है :

''अरे इन दोउन राह न पाई''

एक ओर उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्र, गंगा-स्नान आदि की भर्त्सना की :

''पाथर पूजे हरि मिलैं तो मैं पूजूं पहार।
ताते तौ चाकी भली पीस खाय संसार।।''

बाह्य आडम्बर–जटाएं रखना, माला फेरना, तीर्थ-यात्रा करना, रोज़ा-रखना आदि का भी उन्होंने बड़े तीखे शब्दों में विरोध किया है :

''केसनि कहा बिगारिया जो मूड़ै सौ बार।
मन को कहो ना मूड़िये जामैं विषय विकार।।''

छुआछूत को भी वह गांधीजी की तरह मानवता के लिए कलंक मानते थे । इस कुरीति का विरोध भी उन्होंने कहीं सीधी-साधी शब्दावली में तो कहीं चुभती वाणी में किया है । ब्राह्मण को छुआछूत करते देख वह फटकार लगाते हैं :

''जो तू बाहम-बाहम्नि जाया।
और राहते काहे न आया।।''

अन्यत्र भी वह कहते हैं

''जाति पाति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि कौ होई।।''

सारांश यह है कि कबीर की मानवतावादी और जनकल्याण की भावना ने संसार में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय और उत्पीड़न को देखकर विद्रोही और क्रांतिकारी की भूमिका अपनायी और जहां कहीं भी विकृतियां देखीं, उनका विरोध किया । अपनी इसी प्रकार की उक्तियों के कारण कबीर को उपदेशक, सुधारक, क्रांतिकारी, विद्रोही और युग-प्रवर्तक कवि कहा गया है ।

उत्तम काव्य लिखने के लिए जिन तीन हेतुओं का उल्लेख किया जाता है–प्रतिभा, अध्ययन और अभ्यास, उनमें से कबीर में केवल एक गुण था–प्रतिभा । कवि जिन उद्देश्यों के लिए कविता लिखता है–यश, धन और पाठकों को रसमग्न करना, कबीर के मन में इस प्रकार का कोई उद्देश्य नहीं था । काव्य की भाषा साहित्यिक, कलात्मक, मधुर और संगीतमय होती है । कबीर की भाषा सधुक्कड़ी और बोलचाल की भाषा थी जिसमें न साहित्यिक गुण थे और ना कोमलता और मधुरता । अतः उनका काव्य उत्तम काव्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता । वस्तुतः काव्य दो प्रकार का होता है–आभिजात्य काव्य जिसे पढ़कर पाठक रसमग्न हो जाते हैं और जिसका विषय उदात्त और भाषा सुसंस्कृत होती है । दूसरा जन-काव्य होता है जो जनता की बोली में जनता के भावों और समस्याओं को प्रकट करने के लिए लिखा जाता है और जनता के गले का हार बन जाता है । कबीर

www.estudymart.com
The Hub for Online Reading and E-books

का काव्य निश्चय ही आभिजात्य काव्य न होकर जनता का और जनता के लिए लिखा गया काव्य है । काव्य के तीन तत्त्व माने गये हैं–सत्य, शिव और सुन्दर । कबीर के काव्य में सत्य और शिव के तत्व तो मिलते हैं, परन्तु सौन्दर्य का नितांत अभाव है । एक ओर वह अपने युग के समाज में व्याप्त कुरीतियों का सच्चा चित्र उपस्थित करते हैं और दूसरी ओर समाज और व्यक्ति के कल्याण का मार्ग बताते हैं । कुछ स्थलों को छोड़कर उनकी रचनाओं में न भाव सौंदर्य है, न कला का सौंदर्य और न भाषा का माधुर्य ।

कबीर मानवतावादी, संवेदनशील और सहृदय संत थे । व्यक्ति रूप में उन्हें परमात्मा से बिछुड़ने की और सांसारिक माया-मोह में फंसने की पीड़ा थी और दूसरी ओर समाज में हो रहे अन्याय, उत्पीड़न और शोषण की व्यथा थी ।

संवेदनशील हृदय वाला यह कवि सच्चा भक्त था और उसके हृदय में ब्रह्म से बिछुड़ने की पीड़ा और उससे मिलने की तीव्र आकांक्षा थी । अपने साथ ही वह अन्य लोगों को भी सांसारिक माया-मोह से मुक्त होकर साधना के मार्ग पर चलकर और भक्ति के द्वारा ब्रह्म से मिलने की प्रेरणा देना चाहते थे ।

(ग) सूर द्वारा वर्णित वात्सल्य का सोदाहरण परिचय दीजिए।

उत्तर–सूरदास हृदय के पारखी कवि थे । मानव-मन की विभिन्न दशाओं का जितना गहन और सूक्ष्म ज्ञान अंधे होते हुए भी उन्हें था, उतना कदाचित् ही मध्यकालीन कवियों में से किसी को हो। उनके काव्य के भाव-पक्ष के अंतर्गत उनका वात्सल्य, संयोग और विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन आता है । बालक की विभिन्न मनोदशाओं का जितना विस्तारपूर्ण और गहन अध्ययन तथा विशद चित्रण सूर के काव्य में मिलता है, उतना हिन्दी में अन्यत्र नहीं । बाल-स्वभाव की तीन मूल वृत्तियां आज के मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं–प्रेम, अहम् और भय । सूर ने इनमें से प्रथम दो को चित्रित किया है । अहंभाव के अंतर्गत उन्होंने बाल-स्पर्धा और ईर्ष्या-भावना का बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । कभी कृष्ण अपने भाई बलराम की लम्बी चोटी देखकर स्पर्धा-भाव से मां से प्रश्न करते हैं :

मैया कबहुं बढ़ैगी चोटी,
किती बेर मोहि दूध पिवत भई
यह अजहूं है छोटी।

तो कभी स्वयं चोरी करते पकड़े जाने पर उसका आरोप दूसरों पर लगाते हैं :

मैया मैं नहिं माखन खायौ,
ग्वाल बाल सब पीछे परिकै
बरबस मुख लपटायौ।

बालकों के चिढ़ाने पर माता से शिकायत करना बच्चों का नैसर्गिक स्वभाव है । उसका मर्मस्पर्शी वर्णन सूर ने निम्न शब्दों में किया है :

मैया हौं न चरइयों गाय,
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों
मेरे पाय पिराय।

सूर के 'भ्रमरगीत' में बाल-स्वभाव का चित्रण उस संदेश में भी मिलता है, जो कृष्ण अपनी मां को खिलौनों की देख-भाल के संबंध में भेजते हैं–

मत लै जाय चुराय राधिका
कछुक खिलौनो मेरो।

कृष्ण को अपने बड़े भाई बलराम से जिन्हें वह दाऊ कहते हैं अनेक शिकायतें हैं । अतः वह जब-तब यशोदा से उनकी शिकायत करते हैं–

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ
मोसों कहत मोल को लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ
...
चुटकी दै दै ग्वाल नचावत हंसत सबै मुसकात।

कभी-कभी ईर्ष्या का भाव इतना अधिक हो जाता है कि उसकी लपेट में मां यशोदा को भी नहीं बख्शते–

तू मोही को मारन सीथी, दाऊहि कबहुँ न खीझै

सूरदास ने कृष्ण की बाल-लीलाओं के अनेक मनोहारी एवं मनोविज्ञान सम्मत चित्र अंकित किये हैं । सूरसागर में कृष्ण-जन्म की आनन्द बधाई के दृश्य चित्रण से ही बाल-लीला का अंकन आरंभ हो जाता है । वह अभी घुटनों के बल चलना नहीं सीख पाये हैं, केवल पालने में लेटे रहते हैं,

कबहुं पलक हरि मूंद लेत है, कबहुं अधर फरकावै

हाथ और पांव का अँगूठा मुँह में लेकर चूसते रहते हैं ।

कर पग गहि अंगूठा मुख मेलत।

www.estudymart.com The Hub for Online Reading and E-books

यशोदा उनका पालना झुलाती हैं–

जसोदा हरि पालने झुलावै
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै

उनको किलकते देख, दूध के दांतों की शोभा पर मुग्ध हो मां यशोदा आत्मविभोर हो उठती हैं–

हरि किलकत जसुदा की कनिया

अथवा

हरखित देख दूध की दंतियाँ, प्रेम मगन तनु की सुधि भूली

कुछ बड़े होने पर घुटनों के बल चलते हैं

सोभित कर नवनीत लिये
घुटरून चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किये
मनिमय कनक नन्द के आंगन निज प्रतिबिम्ब पकरिवै धावत

फिर मां यशोदा उन्हें चलना सिखाती हैं–

सिखवत चलन जसोदा मैया
अरबराइ करि पानि गहावत, डगमगाइ धरती धरै पैया

उनके तुतला कर बोलने की कल्पना भी सूर को भावमग्न कर देती है ।

कबहुं तोतर बोल बोलत, कबहुं बोलत तात
सूर हरि की निरखि सोभा, निमिष लगत न मात।

बच्चों में मां-बाप पर प्रेम की एकाधिकार भावना प्रबल होती है। इसी मनोदशा में ईर्ष्या होती है । कृष्ण अकेले माखन खा रहे हैं। सहसा घड़े की तरफ नजर जाती है और उसके निर्मल जल में उन्हें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। वे मान बैठते हैं कि दूसरा कोई बालक उनका माखन खा रहा है । बाल कृष्ण गुस्से से तुनकते हुए नंद से शिकायत करते हैं । नंद बच्चे को हृदय से लगा लेते हैं और घड़े के पास जाकर कृष्ण को गोद में लेकर खड़े हो जाते हैं । घड़े के जल में इस प्रतिबिम्ब को देखकर बालकृष्ण और भी दुःखी हो उठते हैं–उनका प्रतिद्वन्द्वी अब तो नन्द की गोद में पहुँच गया है । उन्हें नन्द के प्रेम पर ही आशंका हो उठती है और माँ यशोदा के पास शिकायत करने पहुँच जाते हैं–अब मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, नंद बाबा का नहीं, क्योंकि वे किसी दूसरे लड़के को गोद में लिये हुए हैं और मेरा अनादर कर रहे हैं । यशोदा कृष्ण के साथ घड़े तक गईं–घड़े को हिलाया ताकि पानी की हिलकोर में प्रतिबिम्ब टूट-फूट जाए, फिर तो कृष्ण माँ यशोदा से खुश हो गये ।

माखन खात हंसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ
निज प्रतिबिम्ब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ
मन मैं माष करत, कछु बोलत, नंद बाबा पै आयौ।
वा घट मैं काहू कैं लरिका, मेरौ माखन खायौ।
महर कंठ लावत, मुख पोंछत चूमत तिहिं ठां आयौ।
हिरदै दिए लख्यौ वा सुत कौं, तातैं अधिक रिसायौ।
कह्यौं जाइ जसुमति सौं ततछन, मैं जननी सुत तेरौ।
आजु नंद सुत और कियौ, कछु कियौ न आदर मेरौ।

यह चित्र बाल-मनोविज्ञान तथा वात्सल्य का अनुपम उदाहरण है । बालरूप और बालक्रीड़ा के सौंदर्य का वर्णन करते-करते सूरदास की काव्य-प्रतिभा कभी मंद नहीं पड़ती । सौंदर्य की अनिर्वचनीयता के वर्णन में यशोदा के मुँह से कहलवाते हैं–

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई।
खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छबि पाई।

जिस तरह श्रृंगार रस के अंतर्गत संयोग और वियोग–दो पक्षों के चित्र सूर ने खींचे हैं, उसी तरह वात्सल्य में भी संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य का वर्णन किया गया है । जब अक्रूर श्री कृष्ण को लेने गोकुल आते हैं, उस समय वियोग की आशंका से माँ यशोदा का हृदय धड़कने लगता है–

कहा काज मेरे छगन मगन कौ नप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौ काल-रूप ह्वै आयौ।।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह मान्यता है कि बाललीला वर्णन से कहीं अधिक यशोदा के मातृ हृदय के चित्रण में सूरदास को अद्वितीय सफलता मिली है । कृष्ण की बाल-लीला, उनके हठ, उनकी मनोरम क्रीड़ा, उनकी खीझ, उनकी शिकायत आदि से माता यशोदा के हृदय का छलकता

www.estudymart.com The Hub for Online Reading and E-books

हुआ आह्लाद बड़ी कलात्मक बारीकी से अंकित किया गया है। श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवास के समय वियोगिनी यशोदा की व्याकुलता, करुणा और उद्वेलित भावनामयता के चित्रण में भी वैसी ही कलात्मकता के दर्शन होते हैं। **आचार्य द्विवेदी** के शब्दों में–**यशोदा के बहाने सूरदास ने मातहृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। सूरदास जहाँ पुत्र्वती-जननी के प्रेमपल्लवित हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं वहाँ वियोगिनी माता के करुणा-विगलित हृदय को भी उसकी सतर्कता से छू सके हैं।**

आचार्य रामचंद्र शुक्ल यह मानते हैं कि जिस **परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। इन दोनों क्षेत्रें में तो इस महाकवि ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखादेखी बहुत अधिक विस्तार दिया सही, पर उसमें बालसुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आयी, उसमें रूपवर्णन की ही प्रचुरता रही। बालचेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कहीं नहीं।**

सूरदास के वात्सल्य वर्णन की अभूतपूर्व कलात्मक प्रौढ़ता का कारण कहाँ है ? **मैनेजर पांडेय** का मत है–**सूरदास वर्ण्य विषय के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। वे जब बालकष्ण की लीलाओं, चेष्टाओं और मनोभावों की व्यंजना करते हैं तो स्वयं बालक बने प्रतीत होते हैं और जब माँ यशोदा की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं तो मातहृदय से युक्त जान पड़ते हैं। सूर की गहरी अनुभूति और तन्मयता के कारण उनकी कविता में 'तदाकार परिणति' की अद्भुत क्षमता है।**

प्रश्न 3. निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 100 शब्दों दीजिए–

(क) घनानंद के काव्य कौशल पर विचार कीजिए।

उत्तर–'लोग हैं लागि कवित्त बनावत' का अर्थ है कि अन्य कवि तो बड़े परिश्रम के साथ, दिमाग को खरोंच-खरोंच कर, लक्षण-ग्रंथों में बताये गये नियमों का पालन करते हुए काव्य-रचना करते हैं, उनकी काव्य-रचना के पीछे प्रयास होता है, वे पाठकों को चमत्कृत करने तथा वाहवाही लूटने के लिए कविता लिखते हैं। इसके विपरीत 'मोहि तो मेरे कवित्त बनावत' द्वारा कवि अपनी रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि उसकी कविता उसके हृदय की तीव्र अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है, हृदय में उमड़ते भावावेग की सहज वाणी है, उसके पीछे परिश्रम, प्रयास, अलंकरण द्वारा पाठक को चमत्कृत करने का उद्देश्य नहीं है। उन्होंने परिपाटी, परम्परा या लक्षण-ग्रंथों के आधार पर काव्य-रचना नहीं की है, वह उनके हृदय का सहज उद्गार है। **शुक्ल जी** ने हृदय की मुक्तावस्था को रसदशा तथा उस अवस्था में लिखी गयी कविता को सच्ची कविता कहा है, घनानन्द की कविता ऐसी ही है। उनके काव्य में रीझि पटरानी है, बुद्धि दासी जो पटरानी के आदेशों का पालन करती है। उनके काव्य में अलंकरण है, उक्ति-वैचित्र्य भी है, अलंकार-योजना देखकर पाठक चमत्कृत भी होता है, पर उन्होंने यह सब जान-बूझकर, कविता कामिनी को अलंकृत करने मात्र की दृष्टि से नहीं किया। कला के उपकरण–अलंकार, उक्ति-वैचित्र्य आदि भावों की प्रबलता के कारण सहज ही आ गये हैं, अतः भावों के सम्प्रेषण में सहायक रहे हैं। उनके हृदय का भावोच्छ्वास स्वतः कलात्मक अभिव्यक्ति बन गया है।

घनानन्द के काव्य का अनुशीलन करने पर उनकी काव्य-भाषा की ये विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं–

1. उनकी भाषा साहित्यिक है, साथ ही उसमें लोकप्रयुक्त भाषा का भी माधुर्य है।
2. वह प्रांजल है, उसमें कोमलकांत पदावली और संगीत-माधुरी है।
3. उसमें एकरूपता है, वह सांचे में ढली हुई सी लगती है।
4. उसमें विविध प्रकार के भावों को प्रकट करने की क्षमता है।
5. इनकी ब्रजभाषा स्वच्छ, अभिश्रित तथा प्रवाहपूर्ण है।
6. लक्षणा शक्ति के द्वारा विरोध-वृत्ति को उभारकर तथा मानवीकरण द्वारा भाषा का सौन्दर्य कई गुना बढ़ा दिया है।
7. इसमें कर्ण-कटु वर्णों का प्रयोग बहुत कम हुआ है।
8. मुहावरों तथा लोकोक्तियों के योग से भाषा की व्यंजकता बढ़ गयी है। अधिकतर मुहावरे हिन्दी के हैं, फारसी के मुहावरों की योजना नहीं है।
9. काव्य-भाषा व्याकरणसम्मत है।

घनानंद की काव्य-शैली के दो भाग किए जा सकते है–वक्र तथा ऋजु। भक्ति-संबंधी रचनाओं में ऋजु तथा रसात्मक रचनाओं में वक्र शैली का प्रयोग किया गया है। ऋजु शैली में संश्लिष्ट रूप में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है जो वक्र शैली में नहीं मिलता। भावों की मार्मिकता तथा गंभीर प्रभावशीलता वक्र शैली के गुण हैं। वक्रता का आधार लक्षक भाषा है। वक्र शैली के दोनों भेद–संश्लिष्ट और विश्लिष्ट घनानन्द की काव्य-कला में दिखाई पड़ते हैं। जहाँ विचारों की प्रचुरता है, वहाँ कवि कम-से-कम शब्दों में उन्हें व्यक्त करना चाहता है। इन स्थलों में शैली संश्लिष्ट हो गई है। संश्लिष्टता भाषा की उतनी नहीं है जितनी विचारों की। ऐसी रचनाएँ अपेक्षाकृत कठिन भी हैं। अनुप्रासादि शब्दालंकारों का लोभ भाषा को और क्लिष्ट तथा संश्लिष्ट कर देता है। जैसे–

www.estudymart.com
The Hub for Online Reading and E-books

सोभा-लोभ-लागि अंग-रंग-रंग प्रीति पाग,
जागि-जागि नेंको न निमेष टेकतें टरी।
बोलनि, चितौनि, चारू ढोलनि, कपोलनि सों,
चाहि चाहि रंक लों सु संपति हिये हारी।।

शैली की मार्मिकता जितनी सरल-साधारण रूप में व्यक्त हुई है उतनी संश्लिष्ट रूप में नहीं । संश्लिष्ट शैली रीति परंपरा का अवशेष जैसी लगती है । वह बुद्धि को जगाकर विचारों की गहराई में पाठक को व्यस्त करती है । पर साधारण शैली हृदय को सीधा स्पर्श करती है और उसे ऐसे भावों में डुबा देती है जो परिचित से हैं ।

(ख) पद्मावत में लोकजीवन के चित्रण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–जायसी-विषयक अद्यावधि आलोचना में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य **आचार्य शुक्ल** का है । जायसी ग्रंथावली की उनकी भूमिका में जिस काव्य-मर्मज्ञता, पैनी दृष्टि और तलस्पर्शी मेधा का परिचय मिलता है, वह अंन्यत्र दुर्लभ है । शुक्ल जी पहले आलोचक थे जिन्होंने जायसी और उनके काव्य को हिन्दी पाठकों के सम्मुख सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया और 'पद्मावत' के काव्य-सौन्दर्य को उद्घाटित किया। इस 'भूमिका' में उन्होंने जायसी के विरह-वर्णन के संबंध में जो कुछ कहा है, वह अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । वहां वह लिखते हैं, ''जायसी की विरह-वर्णन कहीं-कहीं अत्यंत अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुंचने पाया है, उसमें गांभीर्य बना हुआ है। इनकी अत्युक्तियां बात की करामात नहीं जान पड़तीं, हृदय की अत्यंत तीव्र वेदना के शब्द-संकेत प्रतीत होती हैं ।''

जायसी ने नागमती-विरह-वर्णन प्रसंग में पंछी-दूत की कल्पना कदाचित् कालिदास के मेघदूत से प्रेरणा पाकर की है और कालिदास, तुलसीदास आदि की तरह ही उन्होंने विरह की उस पुण्य-दशा का चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें विरही जड़-चेतन का भेद भूल पशु-पक्षियों तक को अपना सहस मित्र समझ उनसे अपनी व्यथा निवेदित करता है और जिसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे भी नायिका के हृदय की वेदना से प्रभावित दिखाये जाते हैं । वाल्मीकि के राम यदि कदम्ब और बिल्व वृक्ष से सीता के विषय में पूछते हैं, तो तुलसी के राम वन के पशु-पक्षियों से पूछते हैं–

हे खग, मग, हे मधुकर स्रेनी।
तुम देखी सीता मगनैनी।।

जायसी एक कदम और आगे हैं । जहां तुलसी के राम को खग, मृग और मधुकर श्रेणी से कोई उत्तर नहीं मिलता, वहां जायसी के 'पद्मावत' में पक्षी के हृदय में नागमती की व्यथा के प्रति सहानुभूति का संचार होता है–

फिरि फिरि रोव कोइ नहिं बोला।
आधी रात विहंगम डोला।।

उसके दुख का कारण उससे पूछता है–

''कहौ विरह-दुख आपन, बैठि सुनहु दंड एक''

इतना ही नहीं, वह उसका संदेश ले जाने को भी तैयार हो जाता है । इस प्रकार जायसी के 'पद्मावत' में विरह-वर्णन का आरंभ बड़ी मार्मिक शैली में हुआ है ।

जायसी के विरह-वर्णन में कारुणिकता ओत-प्रोत है । उनके विरह-चित्र इतने स्वाभाविक हैं कि पाठक सहज की विरह-विदग्ध नायिका के ताप की आंच से द्रवित हो स्वयं करुणा का भाव अनुभव करने लगता है । अतिशयोक्ति भी हृदय-तत्त्व की प्रधानता के कारण सहज प्रतीत होती है–

दहि कोइला भइ कंत सनेहा। तोला मांसु रही नहिं देहा।।
रकत न रहा, बिरह तन जरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा।।

यह वर्णन पढ़ हमें हंसी नहीं आती, अपितु हमारा हृदय द्रवित हो उठता है । प्राकृतिक उपमानों के प्रयोग ने उसे सहज संप्रेषणशील बना दिया है । कृशता, ताप, वेदना के चित्रण के लिए उसने पद्मावती को पद्मिनी नारी के रूप में चित्रित किया है–

कंवल सूख, पखुरी बेहरानी
गलि गलि कै मिलि छार हेरानी

जायसी के विरह-चित्रों में प्रेषणीयता की भी अद्भुत शक्ति है। वह हृदय की भावनाओं का तथा शरीर की दयनीय स्थिति का जो चित्र अंकित करते हैं, उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह शीघ्र ही पाठक को उस व्यथा तक पहुंचा देती है जिसका अनुभव विरही स्वयं करता है । इसके लिए कवि लोक-जीवन से उपमान चुनता है और व्यथा को ऐसी सरल और स्वाभाविक भाषा में प्रस्तुत करता है कि पाठक का हृदय उस चित्र को पढ़कर करुणार्द्र हो उठता है । नीचे की पंक्तियां देखिये :

रक्त ढुरा मांसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होई ररि मुई, पीउ समेटहिं पंख।।

(ग) मुक्तक कवि के रूप में बिहारी की विशेषताएं बताइए।

उत्तर–मुक्तक काव्य के गुण–प्रबंध काव्य में जहां कवि को अपने भावों को व्यक्त करने एवं नायक के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए विस्तत क्षेत्र मिलता है, वहां मुक्तक में उसे एक ही छंद में अपने भाव या नायक के गुणों पर प्रकाश डालना पड़ता है । **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार

''प्रबंध-काव्य एक विस्तत वनस्थली है और मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता। ऐसे अनेक गुलदस्तों को एक ही स्थान पर वनस्थली के रूप में सजाया जा सकता है, किंतु उनमें परस्पर संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता।''

मुक्तक का दूसरा गुण है संक्षिप्तता–संक्षिप्तता से हमारा तात्पर्य मुक्तक की लम्बाई-चौड़ाई की माप से नहीं, अपितु इसका अभिप्राय है कवि की भाव-संक्षिप्तता। मुक्तक-रचना करते समय कवि को भाव-चयन में विशेष सतर्क रहना पड़ता है और उन्हें संक्षिप्त शैली में व्यक्त करना होता है।

मुक्तक का तीसरा गुण उसकी प्रभावोत्पादक क्षमता है–मुक्तककार का उद्देश्य सीमित क्षेत्र में पाठक तक अपने भावों को पहुंचाना होता है। मुक्तक के लिए व्यंग्यार्थ प्रधान भाषा अपेक्षित है जो श्रोता के मर्म तक कवि के कथ्य को पहुंचा सके।

मुक्तक रचना की इन सभी विशेषताओं का सुन्दर समन्वय 'बिहारी सतसई' में हुआ है, इसीलिए एक आलोचक ने कहा है–

''सबकी भूषण सतसई रची बिहारी लाल''

शुक्ल जी ने मुक्तक के संबंध में लिखा था ''जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति तथा भाषा की समास शक्ति जितनी ही अधिक होगी वह उतना ही सफल मुक्तककार होगा।''

इस कसौटी पर बिहारी सफल मुक्तककार सिद्ध होते हैं। भाषा की समास शक्ति के कारण उनके दोहों की चाल मस्ती भरी और प्रवाह मनोमुग्धकारी है। उनकी भाषा सुन्दर और शब्द-चयन भावों के अनुकूल हैं। किसी कवि के सांगरूपकों की परख से उसकी भाषा की समास-शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। बिहारी के सांगरूपक इस दष्टि से अत्यंत सफल हैं–

''खौरि-पनिच, भकुटि-धनुष, बधिक, समरु तज कानि।
हनतु तरुन-मग, तिलक-सर, सुरक-भाल भरि तानि।''

यहां कवि ने 48 मात्राओं के छोटे से छंद से एक पूरा दश्य भर दिया है, जो समास शक्ति अर्थात् शब्दों के क्रम तथा पद-रचना पर ध्यान देने के कारण ही सम्भव हो सका है। इसी प्रकार यह दोहा लीजिए–

दग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हियै, दई नई यह रीति।।

इस दोहे में अनेक स्थितियों का एक साथ चित्रण भाषा की समास-शक्ति के द्वारा ही हो सका है। बिहारी ने पदरचनागत जागरूकता का भी पर्याप्त परिचय दिया है, जिससे शैली में समास-शक्ति आ गयी है–

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट-जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष-रंग होति।।

पदरचना की सजावट, चरणों की अभिव्यक्ति का क्रम ही शैली को कसावट प्रदान कर रहा है।

बिहारी के दोहों में ध्वनि का सर्वत्र राज्य है। उक्ति-वैचित्रय की विदग्धता लाने के लिए अभिधा के स्थान पर लक्षणा और व्यंजना की सहायता से चित्र उपस्थित किए गए हैं–

घाम घरीक निवारियै कलित ललित अलि पुञ्ज।
जमुना-तीर तमाल-तरु मिलत मालती-कुञ्ज।।

यहां यह संकेत दिया गया है कि नायक को नायिका से मिलने के लिए यमुना-तट के उस मालती-कुंज में पहुंचना चाहिए, जहां भौरे गुंजार कर रहे हों। यह व्यंजना शक्ति का सुन्दर उदाहरण है।

व्यंग्य की जितनी क्षमता दोहा-लेखक में होगी, वह उतना ही अधिक प्रभावशाली कवि होगा। बिहारी की सतसई में ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे जहां व्यंग्य की सूक्ष्मता के द्वारा मर्मस्पर्शी स्थलों को उभारकर पाठक के सामने रख दिया गया है–

बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छाँड़िये, खोटे ग्रह जपु दानु।।

कही-कहीं उक्ति की प्रधानता से ही मार्मिक व्यंजना उपस्थित कर दी गई है–

औंधाई सीसी सुलखि, बिरह बरत बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छींटौ छुई न गात।।

यहां उक्ति-वैचित्र्य के कारण ही दोहे में प्रभाव आ गया है। भाव और अर्थ तो गौण हैं, कथन भी वक्र नहीं है, केवल उक्ति-चमत्कार में ही मन पर आघात करने की शक्ति है।

भाषा और शैली में प्रवाह भी मुक्तक-रचना की सफलता के लिए आवश्यक हैं। गुणों की गति, चरणों की गति तथा इन सबसे अधिक शैली की आंतरिक गतिशीलता शैली में प्रवाह लाने के लिए आवश्यक है। बिहारी के अनेक दोहों में आंतरिक आसंग एकसूत्र में बंध कर पारस्परिक क्रम का निर्वाह करते हैं और उनमें गतिशीलता भी पर्याप्त है। एक उदाहरण दीजिए–

www.estudymart.com The Hub for Online Reading and E-books

इही आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब के मूल।
है है फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल।।

इस दोहे में गणों की योजना में पर्याप्त गति है जिससे शैली में गतिशीलता आ गई है ।

तात्पर्य यह है कि मुक्तक रचना के लिए आवश्यक सभी गुणों का समावेश 'बिहारी सतसई' में पाया जाता है । **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार, ''मुक्तक रचना में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी में अपने चरम उत्कर्ष को पहुंचा है । इसमें कोई संदेह नहीं ।'' रहीम के अनुसार तो दोहों की विशालता उसके अर्थ में है, शब्दों में नहीं–

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं
ज्यों रहीम नट कुण्डली सिमिटि कूदि चलि जाहि।।

इस दष्टि से भी बिहारी एक सफल मुक्तककार थे । समास-पद्धति की सारी कला वे जानते थे । थोड़े में बहुत कहने की शक्ति इनकी भाषा में थी । भाव को व्यक्त करने के लिए समुचित उपकरण जुटाने एवं उनका दोहों में उपयुक्त प्रयोग करने में वह पूर्ण समर्थ थे । उनके दोहों को जितनी सूक्ष्म दष्टि से देखा जाए, उतनी ही विशेषता उनमें मिलती है । उनकी इस शक्ति को लक्ष्य कर ही किसी ने कहा है–

''सतसैया के दोहे ज्यों नाविक के तीर
देखन को छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर।''

मुक्तककार के रूप में बिहारी को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि आलोचक बिहारी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को कवि मानते ही नहीं; यही कारण है कि अन्य कवियों के सफल दोहों तक को बिहारी के नाम पर प्रचलित किया गया है ।

■ ■

www.estudymart.com
The Hub for Online Reading and E-books